Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

श्रीमद्भगवद्गीता में नैतिक मूल्य

डॉ. दिवाकर मणि त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत
वी. यस. ऐ वी पी.जी कालेज
गोला, गोरखपुर

शोध आलेख सार– श्रीमद् भगवद्गीता विश्व के महान् ग्रन्थों में से एक है। महाभारत का अंग होते हुए भी यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रुप में सुप्रतिष्ठित है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की यह एक विख्यात ग्रन्थ है। अर्जुन ने गुरुओं के प्रति जो आदर्श भावनायें व्यक्त की हैं वह आज के हर शिष्य को अनुकरण करनी चाहिए। जिससे उनका तो कल्याण होगा ही साथ-साथ समाज का भी कल्याण होगा, इसमें लेश मात्र संदेह नहीं है।

मुख्य शब्द – श्रीमद्भगवद्गीता, नैतिक मूल्य, महाभारत, भारतीय संस्कृति,सभ्यता।

श्रीमद् भगवद्गीता विश्व के महान् ग्रन्थों में से एक है। महाभारत का अंग होते हुए भी यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रुप में सुप्रतिष्ठित है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की यह एक विख्यात ग्रन्थ है। इसका अमर संदेश युग-युगों से भारतीय जन-मानस को आप्लावित करता आ रहा है। गीता में भगनान् श्रीकृष्ण ने गुह् से गुह् ज्ञान का उपदेश किया। जगत् के विविध क्षेत्रों के सभई अधिकारियों के लिये यह महान् दिव्य शिक्षक प्रस्तुत हो गयी। ज्ञानयोगी, कर्मयोगी, भक्तियोगी ही नहीं, संसार के विध उलझनों में फँसे हुए तमोग्रस्त सभी लोगों के लिये गीता दिव्य प्रकास स्तम्भ बनकर सभई को उनके अधिकारानुसार पथ-प्रदर्शन करने लगी। इसी से अरण्यवासी विरक्त साधु के हाथ में भई गीता रहती है और क्रान्तिकारी युवक के हाथ में भी गीता है। दोनों ही उससे प्रकाश पाते हैं। गीता का द्वितीय इसके अन्य सभी अध्यायों में से अधिक महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में जो उपदेश भगवान् कृष्ण के द्वारा किया गया है उसके कुछ बिन्दुओं को केन्द्र बनाकर प्रस्तुत शोध पत्र का अवतरण किया जा रहा है। द्वितीय अध्याय में जो अमर संदेश मिलता है उस दिव्य संदेश या उपदेश के निम्नलिखित बिन्दु विशेष द्रष्टव्य है:—

(क) अर्जुन की अनुकरणीय गुरु भक्ति
(ख) आत्मा का स्वरुप एं जन्म मृत्यु का रहस्य
(ग) निष्काम कर्म का उपदेश

(घ) स्तथतप्रज्ञ होने का उपदेश

(ङ) क्षत्रिय धर्म पालनार्थ उद्बोधन

(च) निर्वाण या परमशान्ति प्राप्ति के साधन का उपदेश।

युद्ध क्षेत्र में अर्जुन ने अपने गुरुओं को देखकर उन्हें न मारने के लिए मन में बार-बार संकल्प किया। कारण संसार में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार जो पुरुष पिता और माता का तथा विद्यादाता एवं मन्त्र दाता गुरु का पोषण नहीं करता, वह जीवन भर पापसे शुद्ध नहीं होता। साथ-साथ यह भी परम सत्य है कि विद्यादाता एवंमन्त्रदाता गुरु माता से भी पूजनीय एवं वन्दनीय है। वेद के अनुसार गुरु से बढ़कर और पूजनीय दूसरा कोई नहीं है। कहा गया है

पितरं मातरं विद्यामन्त्रदं गुरुमेव च।
यो न पुष्णाति पुरुषो यावज्जीवं च सोऽशुचिः।।[1]

पुनश्चः

विद्यामन्त्रपदः सत्यं मातुः परतरो गुरुः।
न ही तस्मात्परः कोऽपिप्रवन्द्यः पूज्यश्य वेदतः।।[2]

शास्त्रों में गुरुओं को विशेष सम्मान दिया गया है। शिष्य को हमेशा गुरु के आदेशानुसार कार्य करना पड़ता है। शिष्य कभी भी गुरु को ईश्वर से कम नहीं समझता है। गीता में अर्जुन श्रीकृष्ण से कहता है कि है मधुसूदन। मैं रणक्षेत्र में भीष्म और द्रोण जैसे पूजनीय गुरुजनों पर बाण कैसे चलाऊँगा?[3] अर्थात् इन गुरुओं के चरणों में तो भक्तिभाव से पुष्य-अर्पण करना मेरा परम कर्त्तव्य है, न कि तीक्ष्ण बाणों से प्रहार करना। कारण गुरुजनों को यदि 'तू' शब्द से सम्बोधित किया जाए तो वह भी घोर पाप का हेतु बन जाता है। जैसे महाभारत में कहा गया है

त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत।[4]
अर्थात् यदि गुरुजनों को 'तू' कह दिया जाए तो यह धर्म की दृष्टि से उनका वध ही हो जाता है—
अवधेन वधः प्रोक्तो यद् गुरुस्वमिति प्रभुः।[5]

गुरु को 'तू' कह देना उसे बिना मारे ही मार देना है। भला, जिन गुरुजनों के प्रति कहा गया अपमान युक्त शब्द भी घोर पाप में कारण बन जाता है, उन गुरुजनों के समक्ष मैं धनुष-बाण से युक्त होकर युद्ध कैसे करुँगा। पितामह भीष्म केवल वयोवृद्ध ही नहीं अपितु ज्ञान वृद्ध भी हैं। बाल्यकाल से ही मैं इनके पास पावन स्नेह को प्राप्त कर स्वयं को धन्य मान रहा हूँ इनकी गोद में बैठकर अनुपम सुख का अनुभव करता हूँ अतः इन पितामह के समक्ष खड़े होकर उनसे युद्ध करना क्या मेरे लिए उचित होगा? द्वितीयतः आचार्य द्रोण जिन्होंने मुझे (धर्म) शास्त्र एं शस्त्र-दोनों प्रकार की विद्या से युक्त कर इतनी क्षमता प्रदान की है उनके द्वारा मैं भगवान् शंकर को भई युद्ध में सन्तुष्ट कर सका हूँ, क्या उन पूजनीय

गुरु से यद्ध करना धर्मसंगत कहा जा सकता है? इस प्रकार गुरु एवं आचार्यों के प्रति अर्जुन के मन में सम्मान का भाव था, जो कि एक आदर्श शिष्य के रुप में सदा-सर्वदा प्रशंसित एवं सुप्रतिष्ठित था। यथार्थतया अर्जुन के हृदय में परमकृपा का आविर्भाव पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य को युद्ध क्षेत्र में प्रत्यक्ष देखकर ही हुआ है। अतः गीता के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ श्लोक में वह 'मधुसूदन' शब्द से श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए यह कहना चाहता है कि आप मधु दैत्य के विनाशक हैं, किन्तु ये मेरे गुरुजन दैत्य नहीं अपितु महान् धर्मज्ञ एवं पुण्यात्मा हैं और आपके अनन्य भक्त एवं प्रशंसक हैं। पुनश्च ' अरिसूदन' सम्बोधन से यह स्पष्ट संकेत करता है कि आपने अपने शत्रुओं का ही वध किया है, किसी प्रातः स्मरणीय एवं पूज्य गुरुजन का नहीं। इन परम हितैषी गुरुजनों के साथ मैं बाणों से कैसे युद्ध कर सकूँगा? इनके साथ मन से या बाणी से भी युद्ध करना महान् पाप है। इसके आगे पुनः गुरुजनों के प्रति विशेष सम्मान व्यक्त करके अपने उदार एवं श्रद्धास्पद हृदय का परिचय देते हुए अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से कहता है—

गुरुनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।।[6]

इसलिये मैं इन महानुभाव गुरुजनों को मारनेकी अपेक्षा इस संसार में भिक्षा द्वारा जीवन यापन करना अच्छा समझता हूँ क्योंकि गुरुजनों की हत्या करके उनके रुधिर से (रक्त से) सने हुए अर्थ और काम का उपभोग ही तो करना पड़ेगा।

यहाँ अर्जुन स्पष्ट रुप से कहता है कि मैं गुरु हत्यारा एवं गुरुद्रोही नहीं बनना चाहता हूँ, भले ही मुझे भिक्षा के अन्न द्वारा जीवन निर्वाह करना पड़ जाए। फिर भी मैं इन धर्मात्मा एवं महायशस्वी गुरुजनों को मारकर अपयश लेकर समाज में नहीं रहना चाहता हूँ तो अर्जुन का यह संदेश आज के युग के लोगों के लिए अत्यन्त ग्रहणीय है, जो कि सदैव दूसरों को लूटकर, मारकर एवं छल से वश में करके धन अर्जित कर सुखपूर्वक रहना चाहते हैं। आज के लोग गुरुजनों को सम्मान देना तो दूर उनको हमेशा कष्ट एवं दुःख देकर धन कमा रहे हैं, परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि किसी को प्रताड़ित एवं प्रपीड़ित करके कमाया हुआ धन एवं यश कम समय के लिए ही रहता है। इसका अन्तिम परिणाम केवल दुःख ही है। अतः शास्त्र में कहा गया है

अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलमन्दिरम्।
अक्लेशयित्वा चात्मानं यदल्पमपि तद्बहु।।

दूसरों को सन्ताप न पहुँचाकर, याचनार्थ दुष्ट जन के घरों पर न जाकर और अपने शरीर को अत्यन्त पीड़ा न देकर, जो कुछ थोड़ा-बहुत प्राप्त हो जाए उसमें ही सन्तुष्ट रहना यह मुमुक्षु के लिए जीविका का साधन बताया गया है।

अतः अर्जुन ने गुरुओं के प्रति जो आदर्श भावनायें व्यक्त की हैं वह आज के हर शिष्य को अनुकरण करनी चाहिए। जिससे उनका तो कल्याण होगा ही साथ-साथ समाज का भी कल्याण होगा, इसमें लेश मात्र संदेह नहीं है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1- ब्रहमवैवर्तपुराण 72/109
2- ब्रहमवैवर्तपुराण 72/112
3- श्रीमद्भगवतगीता 2/4
4- महाभारत कर्णपर्व 69/83
5- महाभारत कर्णपर्व 69/83
6- श्रीमद्भगवतगीता 2/5